दीपक की आत्मकथा

- संकलित

वर्तमान युग ज्ञान – विज्ञान का युग है, ऐसे में यदि एक दीपक भी पढ़ने-पढ़ाने की बात करता है, तो इसमें आश्चर्य क्या ? फिर पढ़ने-पढ़ाने का संबंध ज्ञान के प्रकाश से है और मुझ दीपक का संबंध अंधकार के प्रकाश से है। ज्ञान अंतर के अंधकार का हरण करता है; तो मैं बाह्य अंधकार को दूर करता हूँ। फलतः हम दोनों ही सहकर्मी, सहधर्मी तो हैं ही, आपस में भाई-भाई भी हैं। अतः इसी आकर्षण के वशीभूत होकर आज सुबह-सुबह मैंने 'दैनिक समाचार पत्र' पर दृष्टि डाली तो एक शीर्षक पर नज़र पड़ते ही मन बल्लियों उछल पड़ा, लिखा था – 'दीपक की आत्मकथा' अर्थात् मेरी अपनी आत्मकथा। शीर्षक पढ़ते ही खो गया मैं अपने जन्म की स्मृति में –

कुछ ही दिनों पूर्व की बात है; उस दिन सूर्योदय काल था, जगत्-साक्षी भगवान भास्कर की अरुणिम किरणें अभी धरा का स्पर्श कर ही रहीं थीं। मैं भी माटी के समष्टि स्वरूप में गौरवशालिनी धरा का अंश बना अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहा था, साथ ही तत्पर था, प्रथम रवि-अंशु के हार्दिक स्वागत में। उसी समय एक कुम्हार परिवार के सदस्य वहाँ आकर उपस्थित हुए और बिना कुछ सोचे-बिचारे बड़ी निर्ममता से कुदाली से खोद-खोद कर उन्होंने मुझे और मेरे अन्य बन्धु-बान्धवों को धरा के अंग से अलग कर दिया। हम पोर-पोर बिखर गए; हमारा अस्तित्व भूमि से मिट्टी मात्र हो गया। मैं रुआँसा हो गया, कातर दृष्टि से माता पृथ्वी की ओर देखने लगा। माँ की मूक दृष्टि ने मानो मुझसे कहा – ''रोओ मत, संघर्ष का क्षण है; धैर्य रखो, ... जाओ, विधाता कुम्हार के माध्यम से तुमसे कोई बड़ा कार्य कराना चाहते हैं । बेटा ! ईश्वर किसी महान कार्य के लिए जिसका चयन करते हैं, उसी के समक्ष चुनौती भी उपस्थित करते हैं। चुनौती को वीरता के साथ स्वीकार करना ही महानता प्राप्त करने का प्रथम गुण है; क्योंकि वीरता ही लक्ष्य का वरण करती है।'' माँ के इन गम्भीर, सारपूर्ण एवं आदेशात्मक स्वर को सुनकर मैं मन मारकर रह गया, किन्तु माँ के ये स्वर बार-बार मेरे मन मस्तिष्क में गूँज रहे थे। ''..... महान कार्य के लिए चयन करते हैं ..... चुनौती उपस्थित करते हैं। चुनौती को वीरता के साथ स्वीकार करना ..... महानता ..... प्रथम गुण ..... क्योंकि वीरता ही लक्ष्य का वरण करती है।'' ..... मुझे प्रतीत हो रहा था कि एक तरफ कानों में गुंजन हो रहा था और दूसरी तरफ मेरे हृदय में विचारों का महा-तत्व दृढ़ता प्राप्त कर रहा था। बान्धवों सहित टोकरियों में भर लिया और सिर पर रखकर घर की ओर चल दिए। टोकरी में पड़ा और सिर पर चढ़ा मैं सोचता रहा – पहले तो कुदाली के प्रहार से क्षत-विक्षत कर दिया, फिर सिर पर चढ़ा लिया, किन्तु दूसरे ही क्षण सोचा यह भी विधाता का कोई नियम होगा अथवा मेरी सहनशक्ति का प्रतिफल; मुझे याद आया- मेरी माँ धरती भी तो कितना कुछ सहन करती है, इसीलिए तो वह स्वर्ग से भी महान है।

कुछ ही समय के पश्चात एक छोटे से घर के समक्ष मुझे जोर से पटक दिया गया; उस आघात से मेरा पूरा शरीर झनझना उठा। मैं अभी सँभल भी नहीं पाया था कि कुम्हार के बच्चे मुझे जोर-जोर से कूटने लगे, मुझमें से खोज-खोजकर कंकर अलग करने लगे। कुम्हार वहीं थोड़ी दूर पर बैठा। बीच-बीच में बच्चों को निर्देशित कर रहा था। कुछ ही देर में कुम्हार की पत्नी एक गागर में पानी भर लाई और मुझ (कुटी मिट्टी) में मिलाने लगी। पानी पाकर कुटाई की पीड़ा अभी कम भी नहीं हुई थी कि कुम्हार ने मुझे पैरों से रौंदना प्रारम्भ कर दिया। उसके पैरों की रौंद इतनी तीव्र थी कि मेरे तो डर के मारे हाथ-पैर ही फूल गए। कुम्हार ने जब मुझे पूरी तरह फूला और गुँथा हुआ जान लिया तब उसने बड़े लौंदे का रूप दिया, फिर मुझे घूमते हुए चाक पर रख दिया। चाक की तीव्र गति भी कम भय त्रासक नहीं थी। कुम्हार ने दोनों हाथों के

सहारे मुझे गोल, लम्बा और ऊपर से नुकीला बना दिया। इसके पश्चात् ऊपर की नुकीली, गीली थोड़ी सी मिट्टी को अपनी अँगुलियों के सहारे चाक पर आकार देना प्रारम्भ किया। मैं हतप्रभ था, उसकी कुशल कलाकारी ने मुझे दीप का स्वरूप दिया और एक मोटे से मजबूत धागे से काटकर चाक से अलग कर दिया। उस क्षण मैं अपने नवीन स्वरूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। सारे आघात, सारी पीड़ा विस्मृत सी हो गई। उस क्षण मुझे इस तथ्य का साक्षात दर्शन हुआ कि पीड़ा से ही सृजन का जन्म होता है।

कई दिनों तक मुझे कड़ी धूप में सुखाया गया। मैंने सूर्य के उस दाहक-स्वरूप को सहन किया या फिर यह कहूँ कि रवि के उस प्रखर तेज को धारण करके मैंने अपने अन्दर के कच्चेपन को दूर किया। मेरी समझ में सूर्य की सत्संगति से मैं मजबूत हो गया था; किन्तु कुम्हार को संतुष्टि कहाँ? उसने मुझे पुनः आग की भट्टी में पकने के लिए डाल दिया।

मित्रो । भट्ठी की तीव्र दाहकता का वर्णन क्या करूँ? देखने वाले तो क्या सुनने वालों के भी दिल दहल जाएँ। मुझे कुम्हार पर बहुत क्रोध आ रहा था; किन्तु मेरा वह क्रोध उस क्षण श्रद्धा में बदल गया जब आवा ठण्डा हुआ और कुम्हार ने मुझे बड़े स्नेह और उल्लास से बाहर निकाला। बाहर आकर खुले आकाश और ठंडी हवा के सम्पर्क से मुझे शीतलता की अनुभूति हुई। उसी समय मैंने देखा - मेरा जो सहोदर आवे में कुछ किनारे पर था, जिसने अग्नि की दाहकता का सामना नहीं किया था, वह कमजोर था। आवे से निकालते समय ही वह एक जरा से धक्के से टूट गया था अब मैं मजबूत था। मैंने जीवन के अनेक थापों और तापों को सहा था, अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए, अपने आत्मबल को मजबूत करने के लिए कुम्हार मुझे रंग रहा था और मैं कुम्हार में गुरुता के दर्शन कर रहा था। बगल में बैठा कुम्हार का पुत्र एक दोहा गा रहा था । मुझे सुनाई दे रहा था।

"गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है, गढ़-गढ़ काढ़े खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट ॥"

कुम्हार प्रसन्न हो रहा था; क्योंकि समय के थपेड़ों को सहकर भी कठिन संघर्षों का सामना करके भी मैंने चुनौती को स्वीकार किया था। अपने आपको 'सच्चा दीप' सिद्ध किया था।

मैंने स्वयं बिककर कुम्हार को गुरुदक्षिणा प्रदान की और एक सुन्दर से घर में प्रवेश किया। अरे, यह क्या ? लक्ष्य प्राप्ति के हर्ष को कुछ क्षण भी भली प्रकार अनुभव नहीं कर पाया था कि मुझे गलने के लिए पानी में डाल दिया गया, फिर सुखाया गया । मुझमें तेल भरकर बाती डाली गई। मंत्रोच्चारण सहित अक्षत, रोली, चन्दन और पुष्प से पूजा करके मुझे प्रज्ज्वलित किया गया। मैं 'दीप' से 'दीपक' बनकर जीवन की पूर्णता प्राप्त कर रहा था, हरण कर रहा था - उस तमस् का, जो पसरा हुआ था माता धरित्री के सीने पर। फैला रहा था प्रकाश चारों दिशाओं में । मूक नमन कर रहा था उन पंचतत्वों को जिनके योग से साकार रूप धारण किया था, मेरे भौतिक शरीर ने। मूक नमन कर रहा था, कृतज्ञ भाव से पुनः अपनी माँ भूमि को अपनी मातृभूमि को।

माँ पृथ्वी मुझे आशीष प्रदान कर रहीं थीं; अपनी कुक्षि की धन्यता की अनुभूति के साथ।

इस गहरी भावानुभूति से बाहर निकल जब मैं सचेतनता को प्राप्त हुआ तो पाया -

घर के मुखिया अपने बच्चों को मेरा उदाहरण देकर शिक्षा दे रहे थे - "देखो बच्चो ! जिस प्रकार यह नन्हा सा दीप स्वयं जलकर भी दूसरों को प्रकाश देने में ही अपना जीवन अर्पित कर देता है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य को भी जीवन के संघर्षों से घबराए बिना अपने आत्मबल को विकसित करके समाज और राष्ट्र के हित में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देना चाहिए। यही मानव जीवन की सार्थकता है, क्योंकि त्याग के सुख का आनन्द अनिर्वचनीय होता है, अतुलनीय होता है।"

इस प्रकार मुखिया अपने बच्चों को समझा रहे थे और मैं सुन रहा था, संतुष्ट और प्रसन्न हो रहा था – अपने जीवन की सार्थकता पर, मिट्टी से 'दीप' और दीप से 'दीपक' तक की यात्रा पर।

सच है, जो काल की मार को सहते हैं, कुटते, गलते और तपते हैं, संघर्षों की भट्ठी में पकते हैं, वे ही अपने उस त्याग और तप के बल पर महानता धारण करते हैं और प्राप्त करते हैं–जीवन की सार्थकता।

अभ्यास

बोध प्रश्न

1. ज्ञान और दीपक के आपसी संबंध को स्पष्ट कीजिए।
2. जीवन में आने वाले संघर्षों और चुनौतियों को विकास का मार्ग क्यों कहा गया है ?
3. दीपक से मानव-जीवन की तुलना किस रूप में की गई है ?
4. ''दीपक की आत्मकथा'' नामक पाठ से आपको क्या प्रेरणा मिलती है ?
5. दीपक ने किस-किस को नमन किया और क्यों ?
6. माता की कुक्षि कब धन्यता प्राप्त करती है ?
7. दीप ने अपने आपको 'सच्चा दीप' कैसे सिद्ध किया ?
8. मानव-जीवन को सार्थकता कैसे प्राप्त होती है ?
9. ''गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है..... बाहर मारे चोट।'' इन पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए ?

योग्यता विस्तार

1. प्रस्तुत पाठ के आधार पर 'पुस्तक की आत्मकथा' लिखिए।
2. मिट्टी से बनाए जाने वाली वस्तुओं की सूची बनाइए तथा मिट्टी के बर्तन बनाने का कार्य स्वयं जाकर देखिए।
3. आत्मकथा और जीवनी के अंतर को शिक्षक से समझकर, उसे लिपिबद्ध करिए।

शब्दार्थ

आलोकित = प्रकाशित। **यत्र-तत्र** = यहाँ=वहाँ। **सर्वत्र** = सभी जगह। **सहकर्मी** = साथ काम करने वाला। **अरुणिम** = लाल। **समष्टि** = सम्पूर्ण। **निर्ममता** = कठोरता। **हतप्रभ** = आमंत्रित। **आघात** = चोट। **विस्मृत** = भूल जाना। **सृजन** = निर्माण। **दाहक** = जलाने वाला। **अक्षत** = चावल के खड़े दाने। **तमस** = अंधकार। **आवा** = मिट्टी के बर्तनों को आग में तपाने की भट्टी। **अनिर्वचनीय** = जिसे शब्दों में व्यक्त न किया जा सके। **अतुलनीय** = जिसकी तुलना न की जा सके। **काल** = समय।